यूलिया द्रूनिना

अलीस्का

यूलिया द्रूनिना

अलीस्का

चित्रकार :
वेनिआमीन कोस्तोत्सिन

अनुवादक :
संगमलाल मालवीय

रादुगा प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

यह घटना एस्तोनिया की है। सन् 1944 के पतझड़ के दिन थे। सोवियत संघ और नाज़ी जर्मनी के बीच युद्ध चल रहा था।

उन दिनों मैं मोर्चे पर तैनात तोपख़ाने की एक रेजिमेंट में चिकित्सा-परिचारिका थी और आक्रमण करनेवाली फ़ौजों की अग्रिम टुकड़ियों के साथ चल रही थी। हमारा चिकित्सा-वाहन कहीं पीछे छूट गया था। इस बीच पट्टियों का स्टाक तेज़ी

से ख़त्म होता जा रहा था: आक्रमण के दौरान घायलों की संख्या सदैव तेज़ी से बढ़ जाती है।

एक दिन एस्तोनिया के एक वापस लिए हुए गांव में एक परेशान बूढ़ी औरत मेरे पास आई। वह अपने दुबले हाथों में एक चीखती-कराहती मुर्ग़ी को संभाले हुए थी। बुढ़िया रूसी नहीं जानती थी, पर उसकी सारी बातें बिना कहे साफ़ समझ में आ रही थीं: गोलीबारी के दौरान मुर्ग़ी की एक टांग टूट गई थी।

मुझे बूढ़ी औरत की मौन चिन्ता अनुचित न लगी। मैं उन लोगों में न है, जो यह सोचते हैं कि दर्द को महसूस करना इन्सान का विशेषाधिकार है।

लेकिन मेरे साथी ऐसी मरहम-पट्टी के बारे में क्या कहेंगे?

मैंने उस बूढ़ी औरत को यह समझाने का प्रयास भी किया कि घायलों के लिए पट्टियों की कमी है। पर उसने मेरी बात नहीं मानी और चिंचियाती मुर्ग़ी को मेरी तरफ़ बढ़ाए जा रही थी।

अब तक जिज्ञासु सैनिकों ने हमारे चारों तरफ़ घेरा बना लिया था। अचानक एक अधेड़ उम्र फ़ौजी की झिड़की सुनाई दी:

"अरे बेटी, ज़िन्दा जीव दर्द से तड़फड़ा रहा है! क्या तुम इतनी निर्मम हो?"

अधेड़ उम्र फ़ौजी की बात का एक नौजवान सैनिक ने समर्थन किया:

"अरे, सभी शहरी एक जैसे होते हैं। वे पराया दर्द नहीं समझते!"

 उसके बाद मुझे ताबड़-तोड़ झिड़कियां और लानतें दी

जाने लगीं। मुझे क्या-क्या नहीं कहा गया! उन बातों को यहां दोहराना शायद उचित न होगा...

और एक मसख़रे की तो शामत ही आ गई, जिसने 'घायल' का शोरबा बनाने का प्रस्ताव रखा था। वह चुप होकर बस अपनी धूसरित पलकें झपकाने लगा।

मैंने अपना मेडिकल बैग खोला। किसी ने चाक़ू से तराशकर दो नन्ही-नन्ही खपच्चियां तैयार कीं और मैंने उन्हें पूरे चिकित्स-कीय एहतियात के साथ मुर्ग़ी की टांग में बांधकर उसकी मरहम-पट्टी कर दी।

इस तरह मोर्चे पर तैनात सैनिकों द्वारा मुझे सहृदयता का एक प्रत्यक्ष सबक़ दिया गया, जबकि युद्ध उन्हें हर तरह की भावुकता से रहित कर सका होता...

मैं उस सीख को कभी न भुला पाई। वह मुझे इस समय भी याद है, जब मैं अलीस्का के बारे में लिख रही हूं। क्या यह बात बताने योग्य है?

युद्ध के ज़माने का वह पतझड़ मुझे भुलाए नहीं भूलता, जब मैं, एक बेढंगी लड़की, मेडिकल बैग कन्धे पर लटकाए थी और मेरे हाथों में एक तड़फड़ाती, चिंचियाती हुई मुर्ग़ी थी।

एक बार मेरी बेटी अल्योन्का ने मुझे एक ऐसे कुत्ते के बारे में बताया, जो 'ख़ुद को बेचने' की कोशिश करता है।

ऐसे विचित्र जानवर से अल्योन्का की मुलाक़ात मास्को के चिड़िया बाज़ार में हुई थी, जहां वह हर इतवार को जाया करती थी। चिड़िया बाज़ार में सिर्फ़ पक्षी ही नहीं बिकते, बल्कि तरह-तरह के जीव-जन्तु भी वहां लाकर बेचे जाते हैं—मछलियां, गिनीपिग, कुत्ते...

* * *

कुत्ते अपने मालिकों के पास एक ऊंची चहारदीवारी के किनारे-किनारे बैठे हुए थे। अस्वाभाविक वातावरण और किसी विश्वासघात की आशंका से उत्तेजित कुत्ते हरेक राहगीर पर ज़ोर-ज़ोर से भौंक रहे थे। कुत्ते बेचनेवाले चुपके से उन्हें उत्तेजित कर देते थे, जैसे कि पुराने ज़माने में जिप्सी लोग बेचने के समय अपने घोड़ों को छेड़कर उन्हें नचाने-कुदाने लगते थे। यूं कहें कि जितना ज़ालिम कुत्ता, उतनी ऊंची क़ीमत – ज़ाहिर है कि वही एक अच्छा पहरेदार होगा।

एक बेहद दुबला, हड्डहा, उपेक्षित अलसेशियन कुत्ता चहार-दीवारी के क़रीब सबसे अलग चुपचाप बैठा हुआ था। उसका मालिक नहीं था। वह हरेक उस कुत्ते को ईर्ष्या से देख रहा था, जो अपने नए मालिक के साथ चला जाता। उसकी उदास आंखें, उसका धीरे-धीरे दुम हिलाना और उसकी तनी हुई आकृति जैसे यह अहसास दिलाते: "मुझे भी ख़रीद लीजिये, मेहरबानी करके!"

पर बाज़ार में कोई भी ख़रीदार ऐसे सौदे का इच्छुक न था, जिसकी अपनी क़ीमत न हो। ख़ुद को बेचनेवाला या यूं कहें ख़ुद को समर्पित करनेवाला कुत्ता – यह न समझ में आनेवाली और शक पैदा करनेवाली बात थी। वैसे आकृति में यह अलसेशियन जैसा था... लेकिन वंशावलि की कल्पना कोई भी कर सकता था!

अल्योन्का लगातार तीन इतवार तक चिड़िया बाज़ार में जाती रही और हर बार उसने चहारदीवारी के पास, उसी जगह पर उस कुत्ते को बैठा हुआ पाया। हर बार उसकी आंखें निराशा

से बुझती-सी जा रही थीं और हड्डियों का ढांचा उभड़ता आ रहा था...

अल्योन्का से यह कहानी सुनकर हमने यह निर्णय किया कि कुत्ते की नस्ल या वंश की जांच-परख किए बिना उसे ख़रीद लिया जाए – भले ही वह दोग़ला कुत्ता हो।

अगले इतवार को हम लोग चिड़िया बाज़ार पहुंच गए। झटपट जानवरों और आदमियों की भीड़ पार करते, रास्ता बनाते हुए चल दिए। जानवरों और पक्षियों की मिली-जुली आवाज़ें, भौंकना, किकियाना बड़ा कर्णकटु लग रहा था।

शोर-शराबा करते, चेन खींचते कुत्तों के बीच बर्फ़ीली ज़मीन पर अचानक एक छोटा-सा भयभीत जानवर बैठा हुआ दिखलाई दिया। बड़ी-बड़ी चटक पीली आंखें, रेतीले रंग का तना हुआ शरीर, शानदार पूंछ और पतली, नन्ही टांगें।

उसकी गर्दन पर घर का बना हुआ एक पट्टा था। पट्टे से बंधी हुई चेन को एक दुबला, सहमा-सा लड़का संभाले था, जो शायद इस सख़्त आदेश के साथ घर से निकाला गया था कि वह जल्द से जल्द इस 'बिनबुलाए मेहमान' से पिण्ड छुड़ा आए।

मैं जानवर के क़रीब बैठकर उसे सावधानी से सहलाने लगी। उसने अपने कान दबा लिए।

"संभालकर रहिएगा! कहीं काट न ले," लड़के ने चिल्लाकर कहा, लेकिन अब तक मैं उसे अपनी बांहों में समेट चुकी थी। उसका दिल तेज़ी से धड़क रहा था और वह बुरी तरह से कांप रहा था। एक वन्यजीव के लिए इससे दारुण यातना और क्या हो सकती थी!?

वह काफ़ी भयभीत और बहुत अभागा लग रहा था।

मैंने उसे लोमड़ी का बच्चा समझा था। बाद में हमें पता चला कि वह स्तेपी की कोरसैक नस्लवाली एक वयस्क लोमड़ी है।

विश्वकोष में कोरसैक लोमड़ी का ब्योरा इस प्रकार है: "आकार-प्रकार में साधारण लोमड़ी की तरह का एक जीव, लेकिन उससे छोटा (शरीर की लम्बाई 50 से 60 सेंटीमीटर, दुम की – 25 से 35 सेंटीमीटर) ... यह जीव एशिया और दक्षिण-पूर्वी यूरोप के रेगिस्तानी और अर्द्ध मरुस्थलीय इलाक़ों में पाया जाता है। सोवियत संघ में यह उत्तरी काकेशिया से बाइकाल के पार तक और उत्तर की ओर 50 डिग्री अक्षांश तक के इलाक़ों में मिलता है। कोरसैक नस्ल की लोमड़ियां कुतरनेवाले जीवों का सफ़ाया करने में बड़ी उपयोगी होती हैं।"

मनुष्य इस 'बड़े उपकार' के बदले में कोरसैक नस्ल की लोमड़ियों का निर्दयता से विनाश कर रहा है। दुर्भाग्य से – विश्वकोष के अनुसार – इस जानवर का "व्यावसायिक महत्त्व है – इनकी रोएंदार खालें इस्तेमाल की जाती हैं।"

... मैंने लोमड़ी को हाथों में संभाला और सहमे हुए लड़के को दस रूबल का एक नोट थमा दिया।

मुझे उन परेशानियों का भरपूर अहसास था, जो अब आनेवाली थीं। यह बात जानवर के रख-रखाव संबंधी कठिनाइयों तक ही सीमित न थी, जिनका अम्बार लगना स्वाभाविक था। ख़ासकर जब आप किसी जीव को उसकी जंगली दुनिया से दूर घर ले जाते हैं और उसे बांधकर भी नहीं रखना चाहते हैं। और मुद्दा केवल निजी दायित्व का ही नहीं, जो चैन नहीं लेने देता: "तुम सदा उनके लिए ज़िम्मेदार हो, जिन्हें अपना दोस्त बनाते हो ..."

मुख्य बात तो यह है कि वन्यजीवों के साथ मानवीय संबंधों का अन्त प्रायः कारुणिक होता है। 'वन्य जगत' उनसे बदला लेता है, जो उसकी व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हैं।

मैं उस लड़के से पूछना चाहती थी कि जानवर का नाम क्या है, कहां से आया है और उसकी आहार संबंधी आदतें क्या हैं। निश्चय ही कुतरनेवाले जीवों को यानी कि लोमड़ी का नियमित आहार मैं क़तई न जुटा पाती। लेकिन इसी वक़्त अल्योन्का एक बवण्डर की तरह मेरी ओर झपट पड़ी। वह उस कुत्ते को साथ लिये थी जिसे ख़रीदने के लिए हम लोग चिड़िया बाज़ार आए थे। आश्चर्य है कि यह कुत्ता सचमुच ही अलसेशियन था। वह ख़ामोश और लुभावना मालूम पड़ रहा था, बस, ज़रा ज़्यादा दुबला-पतला था। वह बेहद ख़ुश था कि अन्त में उसे 'ख़रीदार' मिल ही गया। और वह मेरी लड़की के पीछे-पीछे चिपका हुआ-सा चल पड़ा। उसी समय कुत्ते का नाम हमने रख दिया तीख़ोन, और लोमड़ी का नाम – अलीस्का।

इस बीच अलीस्का का नन्हा मालिक 'सौदा' बेचकर रफ़ू-चक्कर हो चुका था। और हमें यह भी पता न चल पाया कि हमारे ठंडे शहर मास्को में वह कैसे और कहां से आई? शायद अपनी लम्बी-सी टांगों से चलकर किसी अज्ञात लोक से, भूली-बिसरी परीकथाओं के देश से आई थी...

मैं कंपकंपाती अलीस्का को बांहों में दबाए भीड़ को पार करती चल रही थी, चिड़िया बाज़ार में हरेक की नज़रें मेरी तरफ़ थीं। इसी वक़्त कोई नन्ही-सी चंचल लड़की तंग करते हुए पूछने लगी: "आण्टी, आण्टी, आपने इसे क्यों ख़रीदा है? फ़र कालर के लिए, है न?"

* * *

हमें यह मालूम न था कि अलीस्का को खिलाया क्या जाये, लेकिन स्पष्ट था कि वह शाकाहारी नहीं है...

अलीस्का ने रसोईघर से हंस की एक टांग की चोरी की। शीघ्र ही अलमारी के नीचे से कटर-कटर की आवाज़ सुनाई दी। मेरी बेटी अभी वहां झांककर देखने ही वाली थी कि वह आवाज़ खांसी में बदल गई। हम लोग डर गए कि अलीस्का के गले में कुछ अटक गया है। लेकिन शीघ्र ही यह समझ में आया कि इस खांसी के द्वारा कोरसैक नस्ल की लोमड़ियां अपना हलका ग़ुस्सा प्रगट करती हैं। यह उनका एक स्वाभाविक तरीक़ा है।

अलीस्का ने अपनी नाराज़गी एक दूसरी तरह से भी प्रगट की, जब कमरे में हमारी पालतू बिल्ली पूसी ने रोएं फुलाए हुए परेशान-सा प्रवेश किया। स्पष्टतः उसे जंगली जानवर की विचित्र गन्ध बेचैन कर रही थी।

अलीस्का तुरन्त झपटकर अलमारी के नीचे से बाहर आई और एक पिल्ले की तरह ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगी। यह उसके क्रोध की चरम सीमा थी।

पूसी ने भी धमकाते हुए अपनी पीठ को धनुषाकार बना लिया। मैंने फुफकारती, ग़ुस्सा प्रगट करती हुई बिल्ली को झपटकर हटाया।

अलीस्का ने तीख़ोन से प्रथम, 'औपचारिक' परिचय के दौरान भी इसी तरह का व्यवहार किया था। स्पष्ट है कि जब उन्हें बाज़ार से घर ला रहे थे, बेचैनी के उन क्षणों में उन्हें एक दूसरे की उपस्थिति का अहसास न हुआ। लेकिन घर में घूमने-फिरने की पूरी आज़ादी मिलने और वातावरण से घुल-

मिल जाने के बाद अलीस्का ने हर तरफ़ अपना अधिकार जमा लिया। ख़ामोश तीख़ोन हैरानी से नन्हे गुस्ताख़ जानवर को देख रहा था, जो आवेश में ज़ोर-ज़ोर से भूंकता जा रहा था। वह तो उसे एक ही वार में ठीक कर सकता था। ख़ैर, यह प्रारम्भिक परिचय भौंकने-गुर्राने तक सीमित रहा। कुत्ते को भी वहां से हटाना पड़ा।

पूसी और तीख़ोन पर अपना दबका मारकर 'विजेता' ने रौब से फ़र्नीचर को सूंघना शुरू किया। उसने हर कुर्सी, हर मेज़ और यहां तक कि हरेक पाए का जायज़ा लिया। उसके बाद वह खिड़की के पास रखी हुई एक आराम-कुर्सी पर उछली और दासे पर अगली टांगें टिकाकर सफ़ेद बर्फ़ से ढके आंगन को बड़ी उत्सुकता से देखने लगी। ऐसी पैंतरेबाज़ी उसने कई-कई बार दिखलाई। बस, इसी प्रकार बाहर निहारती रहती थी। खिड़की के उस पार एक स्वतंत्र लोक था न...

मैंने चीनी मिट्टी के बने एक गहरे ऐश-ट्रे में अलीस्का को मांस का शोरबा दिया। उसने शोरबे को सूंघा और ऐश-ट्रे पर बैठकर एक सधे हुए निशानेबाज़ की तरह उसमें धार मारी। हम लोग हैरान थे। क्या विचित्र आचार हैं!

बाद में पता लगा कि लोमड़ियां अपने संचित आहार पर इस तरह अपनी पहचान छोड़ती हैं। लेकिन इससे पूर्व वे उसे ज़मीन खोदकर गाड़ती हैं। यहां तो फ़र्श था, फिर भी अलीस्का ने अन्य सजातीय लोमड़ियों की तरह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति का परिचय दिया था।

बाद में उसने यह 'दांव' बहुत बार दोहराया, पर यह तभी होता था जब उसे कोई आहार पसंद न आता...

रात होते ही अलीस्का रानी की ज़िन्दादिली रंग लाई। वह गिलहरियों की तरह कमरे में फुर्ती से दौड़ लगाने और अपनी करामातें दिखाने में जुट गई। कभी कुर्सियों पर उछलती, तो कभी फ़र्श पर छलांगें लगाती। वैसे लोमड़ी रात्रिचारी जानवर है। उसकी चैतन्यता रात होते ही बढ़ जाती है। लेकिन हम लोग तो उसकी तरह रात्रिचारी न थे। अतः रात में सोने से पहले उसे ग़ुसलख़ाने में बन्द करने का निश्चय किया गया। लेकिन यह फ़ैसला काफ़ी महंगा पड़ा।

दिन भर हम अलीस्का की आवाजाही से घबड़ाकर भोजन-कक्ष में प्रवेश करते और जाते हुए झट से दरवाज़ा बन्द कर लेते। हमें डर था कि चंचल अलीस्का गलियारे और दूसरे कमरे में भी अपने पांव फैला लेगी। वैसे ही भोजन-कक्ष में एक ख़ास क़िस्म की जीव-गंध व्याप्त हो चुकी थी।

पर अलीस्का पूरे फ़्लैट में आज़ाद होकर घूमना-फिरना चाहती थी और इसके लिए उसने बार-बार अपनी स्वाभाविक धूर्तता, ज़िद और पैनी सूझ का इस्तेमाल किया। लेकिन खुला दरवाज़ा देखते ही भोजन-कक्ष से भाग निकलने की उसकी इच्छा अब लुप्त हो गई।

मैंने एक धागे में मांस का एक छोटा टुकड़ा बांधा और बिल्ली के बच्चे की तरह अलीस्का के साथ खेलते हुए, उसे ललचाते हुए गलियारे की ओर बुलाया। अलीस्का झपटकर गलियारे में आई ही थी कि तभी किसी ने भोजन-कक्ष का दरवाज़ा बन्द करना चाहा। लेकिन वह उसे ठेलकर अन्दर पहुंच गई और पकड़ी न जा सकी। चुलबुली पर बेहद प्यारी अलीस्का अपनी 'फ़ैशनपरस्त' तिरछी आंखों से शरारत छलकाते

और खीसें काढ़ते हुए हमारा मखौल-सा उड़ाती नज़र आ रही थी।

इस तरह अलीस्का के साथ 'आंख-मिचौली' खेलते हुए रात में दो बज गए। सामूहिक तिकड़म का परिणाम यह हुआ कि रस्सी का एक छोर अल्योन्का के हाथों में था और दूसरा दरवाज़े के हैण्डिल से बंधा था। लेकिन इस तिकड़म के ज़रिए भी तुरन्त काम न बन पाया। नटखट अलीस्का ने दरवाज़ा बन्द किए जाने से पहले भोजन-कक्ष में भाग आने का दांव मारा।

अंत में फंदा पड़ ही गया। पर यह भी संभव है कि अलीस्का ख़ुद इस उछल-कूद से ऊब चुकी हो। ख़ैर, तमाम दांव-पेंच के बाद उसे ग़ुसलख़ाने में बंद कर दिया गया।

अलीस्का की तूफ़ानी हरकतों ने मुझे इतना बदहवास कर दिया कि उस रात मेरी नींद रफ़ू-चक्कर हो गई। आख़िर मुझे नींद की गोलियों का सहारा लेना ही पड़ा। इधर झपकियों का दौर शुरू ही हुआ था कि ज़ोरदार धमाका सुनाई दिया।

मैं झट से उठी और सीधे ग़ुसलख़ाने में जा पहुंची। मेरी आंखों के सामने एक अजीब दृश्य था। अलीस्का अपने पिछले पैरों के बल चिलमची में खड़ी थी और कांच की शेल्फ़ पर रखी हर चीज़ को अगले पंजे से गिराए जा रही थी – दांत साफ़ करने के ब्रश, दन्तमंजन, साबुन, शैम्पू, यूडीकोलोन, क्रीम की शीशियां। ये चीज़ें चिलमची में या फ़र्श पर टुकड़े-टुकड़े होकर गिरती, बहती और लुढ़कती हुई बिखरी पड़ी थीं।

लोमड़ी ने धीरे-से मुड़कर मेरी ओर देखा। उसकी थूथनी के ऊपर दांत साफ़ करने का पाउडर पुता हुआ था। उसने अपनी खीसें काढ़ दीं।

मैंने ग़ुसलख़ाने में फैला हुआ कचड़ा साफ़ किया। और वह सभी सामान बाहर निकाल दिया, जो आसानी से हटाया जा सकता था। इस बार मैंने नींद की दो और गोलियां खाईं और इत्मीनान से सो गई कि ग़ुसलख़ाने में अब कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जिसकी मदद से अलीस्का हंगामा खड़ा कर सके।

लेकिन अफ़सोस है कि मेरा इत्मीनान और आंखों की नींद शीघ्र ही ग़ायब हो गई। मैंने धूर्त लोमड़ी की अक़्ल का सही अन्दाज़ न लगाया था...

अचानक कोई विचित्र किटकिटाहट सुनाई दी। मैं लोमड़ी को कोसती हुई उठी और देखा कि वह नहानेवाली हौज़ के कगार से वैसे ही मज़े से फिसल रही है, जैसे बच्चे बर्फ़ के टीले से फिसलते हैं। और फिसलते वक़्त यह 'बच्चा' (शायद ब्रेक लगाने के लिए) अपने लम्बे नाख़ूनों का इस्तेमाल करता था। इसी किटकिटानेवाली आवाज़ ने मुझे जगा दिया था।

अब यह बिल्कुल स्पष्ट था कि अलीस्का की यह करामात सुबह तक – अलीस्का की 'रात' आने तक – चलेगी। या फिर वह मनोरंजन का कोई और साधन ढूंढ़ लेगी...

* * *

दो दिन बाद मुझे ऐसा लगा कि वह बीमार है। उसने अपना नमदा किनारे हटा दिया (बेहद गर्म था!) और ठण्डे टाइलवाले फ़र्श पर लेट गई। वह धीरे-धीरे कराह रही थी, उसकी सांस में गर्माहट थी। नथुने सूखे और गर्म थे।

मैं उसे पशु-चिकित्सक के पास ले गई। वहां पहुंचते ही वह सबके आकर्षण का केन्द्र बन गई। यहां तक कि शानदार ग्रेटडेन भी अब अपने प्रशंसकों की दृष्टि में फीका लग रहा था।

लेकिन अलीस्का अपनी इस सफलता की ओर उदासीन रही, उसकी तबियत ख़राब होती जा रही थी। और जैसे ही चेहरे पर आंसुओं की लकीरें लिए एक मुस्कराती हुई बुढ़िया अपने शराबी बिल्ले को संभाले बाहर निकली, जिसके गले में वैलेरियन की शीशी का ढक्कन अटक गया था, मैं अलीस्का को बांहों में दबाए पशु-चिकित्सक के कमरे में दाख़िल हुई।

डाक्टर ने मरीज़ को कांपता देखकर उसकी दुम के नीचे थर्मामीटर लगाया। उसका बुख़ार नापा, जो 44.5 सेंटीग्रेड था! यह जानवरों के लिए भी बहुत था, जिनके शरीर का तापमान मनुष्य से अधिक होता है।

डाक्टर ने आला लगाकर अलीस्का की विधिवत जांच की और बताया कि उसे सख़्त न्युमोनिया है। शायद अलीस्का को चिड़िया बाज़ार में ही ठण्ड लगी थी, जब वह बर्फ़ीली ज़मीन पर बैठी आवेश में जबड़े खोले ठण्डी हवा को निगल रही थी।

"हालत नाज़ुक है," डाक्टर ने कहा। "लेकिन जंगली जानवर को इंजेक्शन से आघात पहुंच सकता है। इलाज के लिए गोलियां ही दी जा सकती हैं। इसका नाम क्या है?"

"अलीस्का!"

"और कुलनाम?"

"कुलनाम?" मैंने हैरानी से पूछा।

"अरे, आपका कुलनाम क्या है?" डाक्टर ने अधीरता से पूछा।

मैंने अपना कुलनाम डाक्टर को बताया और उसने दवा का परचा लिख दिया। घर जाते समय मैं दवा की दुकान

पर पहुंची और जब दवा का परचा खोलकर देखा तो उस पर लिखा था: "लोमड़ी अलीसा द्रूनिना"!..

अब एक और समस्या सामने आई: अलीसा द्रूनिना को कड़वी गोलियां कैसे खिलाई जाएं! बहुत ख़ूब! यह काम कम रोचक न था – दिन में तीन बार और वह भी लोमड़ी को चकमा देने का!

मैंने मांस के एक टुकड़े को महीन-महीन काटा और उसमें गोली मिला दी। इस तरह पहली बार मैं उसे चकमा देने में सफल रही: मरीज़ ने मांस के साथ दवा निगल ली। लेकिन दवा निगलने के बाद उसकी नज़र में आश्चर्य और अप्रसन्नता का भाव था: "क्या तुमने कूड़ा मिलाया था?"

दूसरी बार अलीस्का ने मांस को खा लिया, लेकिन दवा को उगल दिया। तीसरी बार उसने मांस को छुआ तक नहीं।

और इस तरह अलीस्का धीरे-धीरे कराहते हुए अपनी शिथिल दुम पिछली टांगों में समेटकर निढाल पड़ी थी।

ज़ाहिर है कि उसे गोलियां खाने के लिए विवश करना संभव न था। पर इस तरह इलाज के बिना वह मर जाएगी। और मैं फिर पशु-चिकित्सक के पास जा पहुंची।

"ठीक है," डाक्टर ने कहा। "तो इंजेक्शन ही लगाना होगा।"

नर्स ने अलीस्का की पिछली टांग खींची, डाक्टर ने मोटी सुईवाली सिरिंज संभाली... मैं अपनी सांस रोके खड़ी रही: अनिष्ट की आशंका से जी कांप गया। लेकिन शुक्र है कि सब कुछ ठीक से निपट गया।

तब से उसकी तबियत ठीक होने लगी। लेकिन एक और

समस्या सामने आई। उसे दिन में तीन बार इंजेक्शन लगाया जाना था, पर तीन बार डाक्टर के यहां जाना मेरे लिए मुमकिन न था। तब मेरे पति ने, जिन्होंने कभी हाथ से सिरिंज को छुआ तक न था, एक साहसिक निर्णय लिया: वे ख़ुद अलीस्का को इंजेक्शन लगाएंगे।

मैंने सतर्क किन्तु कुछ आशंकित-सी अलीस्का को अपनी गोद में दबाया। पति ने सिरिंज भरी, धीरे-से उसकी पिछली टांग को अपनी तरफ़ खींचा, उस पर आयोडीन मली और जी कड़ा करके सुई अन्दर घुसेड़ दी। अलीस्का कांप उठी और उसने यह देखने का प्रयास किया कि उसे इतनी बेरहमी से किसने 'काटा' है। लेकिन पहली बार में इंजेक्शन न लग पाया, कहीं रुकावट आ रही थी। हमारे 'चिकित्सक' ने भौंहें सिकोड़कर सुई बाहर निकाली। और फिर उन्होंने अलीस्का की टांग को बदस्तूर अपनी तरफ़ खींचा। अचानक मेरा दायां हाथ अलीस्का के जबड़े में धंस गया और इसी क्षण पति ने सुई घुसेड़ दी। मैंने आंखें मूंद लीं यह याद करते हुए कि अलीस्का ने एक बार बड़ी आसानी से लोहे की चेन चबाकर काट डाली थी। आख़िर ख़ुद को सतानेवालों के साथ उसका यह लिहाज़ कैसा? और कैसे पता चला कि उसकी ही भलाई के लिए उसे यह कष्ट दिया जा रहा है?

लेकिन उसे शायद यह मालूम था, किसी अन्त:प्रेरणा से यह समझती रही होगी। और यह भी मुमकिन था कि उसे मुझ पर अटूट विश्वास रहा हो। इंजेक्शन लगाते समय अलीस्का ने अपने दांत ज़रा दबाए थे, बस...

धीरे-धीरे उसकी हालत सुधरने लगी। देखते ही देखते तबियत

सुधरने के कई लक्षण भी दिखे, जिनमें प्रमुख थे – ताबड़-तोड़ शैतानियों के सिलसिले। जब अलीस्का ने अपनी शैतानी का पहला नमूना पेश किया तो लगा कि अब घबड़ाने की बात नहीं। ख़तरा टल चुका है।

चिड़िया बाज़ार में भय और ठण्ड से कांपनेवाली नन्ही अभागी अलीस्का जल्द ही हमारे घर की आराध्यदेवि बन गई, जिसकी पूजा हमारा छोटा-सा परिवार ख़ुशी से करता था।

हमारे परिवार का हरेक सदस्य उसकी सहानुभूति पाने को लालायित रहता था और मुझे ख़ुद पर अत्यंत गर्व था कि मैं इसमें सफल रही। परिवार में मैं ही एकमात्र थी जिसे अलीस्का ने गोद में उठाने की अनुमति दे रखी थी, लेकिन इसके बावजूद मिलन के प्राथमिक क्षणों में वह अक्सर सिहरकर कांपती और अपने कानों को धीरे-से दबा लेती – उसमें वन्यजीव की सहज प्रवृत्ति और मनुष्य के प्रति अनुराग का संघर्ष हो रहा था।

परिवार में मैं ही अकेली थी, जो अलीस्का को अपने हाथ से खाना खिला सकती थी। वह हमेशा बड़ी शालीनता से आहार लेकर खाती और मुझे विश्वास था कि वह मेरी उंगलियों पर हमला नहीं करेगी।

एक बार मेरे पति ने सोचा कि वे भी उसी तरह अलीस्का को खाना खिलाएं। उन्होंने उसकी तरफ़ मांस का एक टुकड़ा बढ़ाया। लोमड़ी ने बड़ी शराफ़त से आहार लेकर फ़र्श पर रख दिया और बिजली की तरह झपटकर – प्रतीक रूप में ही – आहार परोसनेवाली एक उंगली को धर पकड़ा : "ख़बर-दार, मुझे अब घूस देने की कोशिश मत करना, अगर तुम्हें अपनी

उंगलियां प्यारी हैं।" उसके बाद वह मज़े से, ससम्मान खाने में जुट गई।

मेरी बेटी को अलीस्का अक्सर आतंकित करती थी। वह उसके पैरों की ओर झपटती, उन्हें पकड़ने और काटने की कोशिशें करती। झाड़ू से लैस अल्योन्का फ़्लैट में विचित्र, लम्बी छलांगें लगाती चलती थी। वह अक्सर दहाड़ें मारकर मुझे बुलाने लगती: "मम्मी, बचाओ!"

आख़िर मेरी बेटी अल्योन्का ने लोमड़ी का क्या बिगाड़ा था? वह हमेशा उसके ही पीछे क्यों पड़ी रहती थी? इसे कौन जाने? शायद कभी किसी क्रूर लड़की ने अलीस्का को सताया हो और अल्योन्का उस लड़की की तरह रही हो – ऐसा ही लम्बा क़द, बिखरे बाल, ऊंची आवाज़ और तेज़ मिज़ाज...

या हो सकता है कि अल्योन्का का ज़ोर से बोलना और तेज़ मिज़ाज होना ही उसकी चिढ़ का कारण रहा हो? इसे भला कौन जान सकता है!

मुझे ख़ुद चलने और बातें करने में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती। मेरे मित्र कहते कि जब से अलीस्का मेरे घर आई है, मैं चलती नहीं, दबे पांव सरकती हूं, बोलने के बजाय गुटरगूं करती हूं...

वे पूछते कि मैंने वन्यजीव को ही क्यों चुना, जबकि घरेलू जानवर आसानी से पाला जा सकता था। आख़िर इसे रखने में झंझट भी तो कम नहीं।

मैंने यह क्यों किया है? इसलिए कि उसने मुझे बेशुमार ख़ुशियों की सौगात दी है! मैं ख़ुश थी कि उस प्यार की अधिकारिणी हूं जो मुझे एक स्वेच्छाचारी, अविश्वसनीय

जंगली जीव से मिला और हमारे बीच वह प्यार का रिश्ता निरन्तर पुख़्ता होता जा रहा है।

मुझे यह जानकर ख़ुशी होती कि घर आते समय लिफ़्ट के दरवाज़े की आहट सुनते ही अलीस्का अपनी कनौतियां खड़ी करके झींगुर की तरह किकियाती और कुत्ते की तरह दौड़कर दरवाज़े पर पहुंच जाती। पर फ़्लैट में मेरे आते ही वह कुत्ते से भिन्न प्रकार का हाव-भाव दर्शाती – जैसे कि अभी वह मेरे लिए दौड़कर नहीं आई थी, बल्कि यूं ही गलियारे में चहलक़दमी कर रही थी। वह थी एक बड़ी स्वाभिमानी लोमड़ी।

लेकिन मुझे अपनी लाड़ली अलीस्का का स्वाभिमान, संकोच और आत्मनिर्भरता का यह स्वाभाविक तेवर ख़ासकर पसन्द आता था।

उस असीम सुख का क्या कहना, जब मैं शाम को थकी-थकी, ख़ुद से नाख़ुश और अपनी मानवीय समस्याओं में उलझी घर लौटती, सोफ़े पर बैठकर सुस्ताने लगती कि वनवासिनी अलीस्का उछलकर मेरी गोद में आ जाती। और उसकी तमाम शैतानियां? तो क्या माताएं अपने शैतान बच्चों को कम प्यार करती हैं, चाहे वे बड़े से बड़ा नुक़सान कर डालते हों।

नटखट अलीस्का का स्वभाव बन्दर की तरह चंचल था। वह तोड़-फोड़ करने या काटने-कुतरने का एक भी मौक़ा हाथ से न जाने देती। हमारी ग़ैरमौजूदगी में या रात होने पर उसे अपने 'निजी आवास' – ग़ुसलख़ाने और गलियारे में ही – चक्कर लगाने का हक़ था। लेकिन उसने सदैव इस व्यवस्था को अस्वीकारा। और मौक़ा पाते ही दरवाज़ों के नीचे का फ़र्श खुरचते और गड्ढे खोदते हुए कमरों के अन्दर घुस आने की

कोशिशें करती। एक दिन हम लोग यह देखकर दंग रह गए कि गलियारे में लकड़ी का बना आधा फ़र्श पर्त दर पर्त उखड़ा पड़ा है।

जब हम घर में होते अलीस्का को अपने कमरों में आने देते या वह स्वयं आ धमकती। मुश्किल तो यह थी कि वह अपने लिए ऐसे 'कोनों' को चुनती थी, जहां कोई आसानी से पहुंच न सके। इसी कोशिश में वह 'सारी सुविधाओंवाला अपना प्यारा घर' खोजती फिरती थी...

कभी-कभी अलीस्का मुझे इस सीमा तक छूट देती कि उसकी शानदार पूंछ पकड़कर वह अलमारी के नीचे से खींची जा सके। वह मुझे धमकाते हुए खांसती, मुझ पर गुर्राती और दांत चमकाती। लेकिन मेरी इस ज़्यादती को वह चुपचाप सह जाती और मुझे कभी न काटती।

लेकिन तब हम क्या करते, जब वह सोफ़े के भीतर स्प्रिंगों के बीचोंबीच आराम से जमकर बैठ जाती, जैसे अपनी मांद में हो। शुरू-शुरू में 'चाचा वैक्युम क्लीनर' ने हमारी मदद की। पहले तो इसकी तेज़ 'आवाज़' सुनते ही अलीस्का भाग खड़ी होती और आंखें फाड़े सनसनाती हुई दौड़कर ग़ुसलख़ाने में अपने नमदे पर पसर जाती। लेकिन जल्द ही वह वैक्युम क्लीनर की कर्कश ध्वनि की अभ्यस्त हो गई और उसका भय जाता रहा।

बेचारे 'चाचा' की तो शामत आ गई। वह ग़ुस्से से वैक्युम क्लीनर पर झपटकर भौंकती और उसे दांत मारने का प्रयास करती।

अलीस्का का एक और प्रिय शौक़ था–टेलीफ़ोन का तार काटना...

लेकिन हमारे लिए सबसे अधिक दुखदायी थी घर में हमेशा बनी रहनेवाली चिड़ियाघर जैसी तीखी बदबू। यह बदबू मेरे फ़्लैट के बाहर सीढ़ियों तक फैली रहती।

यह दुर्गन्ध बस या भूगर्भ ट्रेन में सफ़र के दौरान भी मेरा पीछा न छोड़ती। यात्री नाक सुड़सुड़ाते हुए सांस खींचते : मेरे कपड़ों में अलीस्का की स्पर्श-गन्ध व्याप्त थी। एक बार किसी ज़हरीली बुढ़िया ने बड़बड़ाते हुए यह भी कहा था :

"अरे, इसने मेकअप तो किया है, पर बेचारी को नहाने को समय नहीं मिला। जैसे बकरे की बदबू है!"

तमाम उपायों के बावजूद इस दुर्गन्ध से छुटकारा न मिल पाया—सभी तरह की दुर्गन्धनाशक दवाओं के नुस्ख़े नाकामयाब रहे।

उन दिनों मेरा अधिकांश समय घर की सफ़ाई करते हुए बीत जाता। फ़र्श पोंछना और ख़ुशबू की स्प्रे करना—यही मुख्य काम था। दवा की दुकान पर अक्सर लोग चौंकते, जब मैं दुर्गन्धनाशक दवा की दसियों शीशियां ख़रीदती।

मेरे एक मित्र भारत से चन्दन की अगरबत्तियों का बहुमूल्य उपहार लाए। हम लोग इन्हें 'एण्टी-फ़ाक्सीन' यानी कि लोमड़ी की दुर्गन्धनाशक दवा कहते थे। अब मेहमानों के आने से पहले मैं एक या दो सुगन्धित अगरबत्तियां जला देती थी। वे धीरे-धीरे सुलगतीं और फ़्लैट में मदहोश करनेवाला, ख़ुशबूदार धुआं बिखेरती रहतीं। स्वप्निल भारत तथा वहां के रहस्यमय मन्दिरों की सुगन्ध और... अलीस्का की स्पर्श-गन्ध का अहसास बराबर बना रहता था। उसे किसी तरह की 'एण्टी-फ़ाक्सीन' दूर न कर सकी...

सौभाग्य से गर्मी का मौसम क़रीब आया तो अलीस्का की

गन्ध से छुटकारा मिला। हमने मास्को से थोड़ी दूर पर एक बंगला किराये पर लिया और वहां बगीचे में अलीस्का के लिए जालीदार चहारदीवारीवाला अहाता और एक छोटा-सा 'घर' बनाकर तैयार किया गया।

बंगले में आने के बाद अगले दिन मैं जालीदार चहारदीवारी के अंदर... तीख़ोन को देखकर हैरत में पड़ गई जो मज़े से अलीस्का के साथ खेल रहा था। वे पिल्लों की तरह उछल-कूद में तल्लीन थे। यह रहा लोमड़ी और कुत्ते की 'जानी दुश्मनी' का एक नमूना!

जीवन में मुझे तीख़ोन से अच्छे स्वभाव का मिलनसार जीव नहीं मिला। नए घर में उसने सबसे दोस्ती करने की कोशिश की, यहां तक कि साहियों से भी, जो जंगल से रात में बंगले के बग़ीचे में आ जाती थीं। लेकिन दोस्तमिज़ाज तीख़ोन के मैत्री प्रस्ताव पर हर बार पानी फिर जाता: लहू-लुहान नाक और खण्डित आशाएं ही उसके हाथ लगतीं। पर वह निराश न हुआ, शायद कोई दूसरा फुफकारनेवाला कंटीला गोला उसकी दोस्ती का मर्म समझ ले...

लेकिन तीख़ोन अलीस्का के घर में कैसे पहुंचा? तो क्या उसने दो मीटर ऊंची लोहे की जालीदार चहारदीवारी को छलांग लगाकर पार किया है?.. ख़ैर, अभी उसके वापस लौटने पर पता चल जाएगा।

यह काम बड़ी आसानी से किया गया था – वह बिल्ली की तरह चहारदीवारी पर नाख़ूनों के बल जालियों को पकड़कर चढ़ा था। यह बहुत आकर्षक दृश्य न था – मैंने ख़ुद देखा था कि ऐसी 'चहारदीवारी पर सवार' कुत्ता कैसा होता है।

इस तरह तीख़ोन दिन हो या रात किसी भी वक़्त अपनी सहेली के घर में पहुंच जाता था। उनके मिलने का तरीक़ा एक ही होता था। तीख़ोन को आता हुआ देखकर अलीस्का अपनी छटपटाहट पर क़ाबू न रख पाती और चहारदीवारी में इधर-उधर चक्कर काटने लगती। यह सिलसिला तब तक चलता, जब तक कि तीख़ोन अलीस्का के गृह प्रदेश में कूद न पड़ता। और वहां पहुंचते ही वह लोमड़ी की धृष्ट दुम पकड़ने के महत्वाकांक्षी इरादे से प्रेरित होकर उसका पीछा करने लग जाता। दोनों दौड़ते-दौड़ते ख़ूब जोश में आ जाते। कभी-कभी अलीस्का दांव मारकर यकायक रास्ता बदल देती और तब तीख़ोन ख़ुद पर क़ाबू न रख पाता – पूरी रफ़्तार के साथ चहारदीवारी से जा टकराता।

कभी-कभी शोर-शराबे से खिंचकर बिल्ली तमाशबीन बन जाती। चहारदीवारी के किसी एक खम्भे पर चढ़कर वह बुर्ज पर खड़े प्रहरी की तरह 'योद्धाओं' पर अपनी बड़ी-बड़ी, पीली आंखें गड़ाए रहती। बेशक वह अलीस्का की पक्षधर थी और तब उसकी बेचैनी कहीं ज़्यादा बढ़ जाती, जब उसे लगता कि लोमड़ी को वह 'ख़ूंख़ार' कुत्ता बस अभी दबोचकर मार डालेगा। उस वक़्त वह अपनी पीठ को धनुषाकार बना लेती, उसके बाल तनकर खड़े हो जाते और वह ज़ोर से गुर्राती – अभी-अभी तीख़ोन पर हमला करेगी। मैं उसे बमुश्किल खम्भे से खींचकर अलग कर पाती...

अलीस्का और तीख़ोन एक ही बर्तन में खाना खाते थे। घर की मालकिन होने के कारण अलीस्का का पल्ला भारी पड़ता, खाने के लिए पहल वही करती। तीख़ोन एक ओर

खड़ा रहकर धैर्य से प्रतीक्षा करता, जब तक कि उसकी सहेली भरपेट खाकर वहां से हट न जाती। लेकिन सहेली बड़ी लालची थी। उसे यह ख़्याल बेचैन कर देता कि वह इत्ता सारा खाना न खा पाएगी और वह हप्पू की तरह खाने लगती – जल्दी-जल्दी मांस के बड़े-बड़े टुकड़े बिना चबाए निगल जाती। मैं डरती कि उसके गले में कोई टुकड़ा न अटक जाए। और जब पेट में जगह न बचती, तो वह मांस का सबसे बड़ा टुकड़ा दांतों तले दबाकर छटपटाने लगती – "ठूंस-ठूंसकर खाओ, यार, दोस्ती-यारी दरकिनार।"

वह हथियाई हुई उस निधि को ज़मीन में गाड़ देती लेकिन तुरन्त किसी अज्ञात भय से आतंकित होकर उसे खोदकर बाहर निकालती और पहले की तरह उसे उठाकर बेचैनी से अहाते के चक्कर लगाने लगती।

तीख़ोन चुपचाप लोमड़ी की हरकतों पर नज़र रखता और थोड़ी देर बाद उस सुरक्षित भोजन को खोदकर खा जाता।

लोमड़ी और कुत्ता अभिन्न मित्र थे। उनकी दोस्ती पर हमें नाज़ था। लेकिन एक दिन मुझे पिल्ले-सी रोनी आवाज़ सुनाई दी। कौन रो रहा है? और किसलिए?

मैंने खोज-ख़बर ली, यह अलीस्का थी। खेल-खेल में पहली बार तीख़ोन अलीस्का को छोड़कर चला गया। अलीस्का नन्ही बन्दरिया की तरह दोस्त के पीछे-पीछे चहारदीवारी पर चढ़ने की कोशिशें करती। थोड़ी ऊंचाई तक चढ़कर वह नीचे गिरती, ज़रा संभलती और फिर ऊपर चढ़ने लगती, पर पहले की तरह फिर गचाका खाकर गिर पड़ती...

रोने की आवाज़ अधिकाधिक सुनाई पड़ती रही। लोमड़ी

के घर की चहारदीवारी पर चढ़ने-उतरने का तजुर्बा हासिल करने के बाद तीख़ोन हमारे बगीचे का बाड़ा पार करके बाहर जाने लगा। उसे अब रोक पाना नामुमकिन था: गांव में उन्मुक्त विचरण करनेवाली चंचल चौपाया छबीलियों के साथ राह में पलक-पांवड़े बिछाए बहुसंख्य छैलछबीलों का झुण्ड घूमता रहता था। अक्सर उनका सामूहिक गर्जन तेज़ धमाके की तरह फट पड़ता – ख़ासकर जब कोई पराया कुत्ता उनकी राह में आने की हिमाकत करता, कुत्तों के झगड़े छिड़ जाते थे।

कभी-कभी तीख़ोन तीन-तीन दिन तक घर से ग़ायब रहता और जब वापस लौटता तो अत्यन्त दुर्बल, उदास और ज़ख़्मी होकर!

तीख़ोन अपराधी की तरह घर लौटते हुए बाड़े से कुत्ता-घर तक पेट के बल घिसटकर पहुंचता। उसके बाद वह कई दिनों तक घर से बाहर न निकलता, अपने दैहिक तथा आत्मिक घावों को पूरा करता रहता। और ज़रा ठीक होने के बाद फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता।

उधर अलीस्का निस्तेज और खिन्न होती गई, उसकी पहले-सी चैतन्यता ग़ायब हो चुकी थी।

अचानक एक दिन अपने सफ़र से लौटने के बाद तीख़ोन अलीस्का के घर की जालीदार चहारदीवारी में पहुंचा। हमने सोचा कि वह तीख़ोन की उपस्थिति से ख़ुश होकर उछलने-कूदने लगेगी। पर वह बिल्कुल उदासीन रही। तीख़ोन ने उसे आंख-मिचौली के लिए मनाया, उछल-कूद के लिए तैयार करना चाहा, पर उसकी उम्मीदों पर पानी फिर गया। अलीस्का ने उसे मायूस नज़रों से देखा, चौड़े जबड़े खोलकर जंभाई

ली और इतराते हुए अपने घर में जा पहुंची ...

सुबह मैं अलीस्का के घर की ओर खाना लेकर चल पड़ती। मुझे नाश्ता लाते देखकर भूखी अलीस्का बेचैनी से छटपटाने लगती। जब मैं उसके अहाते में पहुंचती, वह एक ख़ुशमिज़ाज पिल्ले की तरह बेसब्री से मेरे कपड़े नोचने लगती और मुझ पर कूद पड़ती।

इस दौरान मैं उसके अहाते की सफ़ाई करती, लेकिन अलीस्का भला अपनी शैतानियों से कब बाज़ आती – कभी झाड़ू पर झपटती, कभी मेरे पैरों पर उछलती जैसे किसी चूहे का शिकार कर रही हो।

यदि मौसम ठीक रहता तो मैं उसके अहाते में हलकी फ़ोल्डिंग मेज़-कुर्सी लाकर रख देती, जिनके पायों पर नटखट अलीस्का के दांतों के निशान थे। मैं अलीस्का के साथ अधिक से अधिक समय बिताना चाहती, उसके क़रीब रहना चाहती, ताकि हमारे संबंध प्रगाढ़ बने रहें।

इसके अलावा मुझे अलीस्का के अहाते में बैठकर चैन मिलता था। अजीब है न, लेकिन सच है: यह जालीदार चहारदीवारी मुझे तमाम चिन्ताओं और परेशानियों से मुक्त कर देती थी!

अलीस्का अपनी ओर ध्यान दिलाने के लिए कभी मेज़ के पाए पर हमले करती, कभी मेरे पैरों पर झपटती, लेकिन उसकी ये हरकतें मुझे विचलित न करतीं। और मैं ख़ुद ख़्यालों में मग्न-सी, खोयी-खोयी उसके साथ खेलती रहती। मैं इस विचार से ख़ुश होती कि दुनिया में कम से कम एक ऐसा प्राणी भी है, जिसकी मैं हर मुसीबत से रक्षा कर सकती हूं।

यह मुझे तब लगता था! जैसे कि किसी को नियम और संयोग के निर्दय संबंध से भी बचाया जा सकता हो, जिसे हम अक्सर भाग्य कहते हैं!..

कभी-कभी मैं अलीस्का को साथ लेकर जंगल की सैर करने जाती थी। उसे बांहों में बच्चों की तरह संभालना पड़ता था, वह पट्टे या चेन की अभ्यस्त न हो सकी थी। अलीस्का को यह सैर-सपाटा बेहद पसन्द था। वह बन्दरों की तरह जिज्ञासु थी, और जंगल तो हर क़दम पर रोचकता से भरपूर था।

एक दिन सैर के दौरान घटी इस छोटी-सी घटना ने मेरे हृदय में अलीस्का के प्रति असीम सम्मान पैदा कर दिया।

उस दिन भी हम घूमने निकले। सितंबर की गर्म दोपहर शान्त और उदास-सी थी। जंगल सैलानियों से ख़ाली पड़ा था, ट्रान्ज़िस्टरों के शोर-शराबे से ऊबा हुआ वह अब चैन की सांस ले रहा था। मैं वनपथ पर बढ़ती जा रही थी। हर तरफ़ भोज वृक्ष के उजले तने, सूर्य की चौंधियाती किरणें और सर्वत्र छाया गहरा सन्नाटा था। अचानक किसी औरत की चीख सुनाई दी। मैंने घूमकर चारों तरफ़ देखा। मुझे सफ़ेद, झबरे बालोंवाला एक भारी-भरकम कुत्ता दिखाई दिया, जिसका क़द बछड़े के बराबर था। वह हमारे पीछे-पीछे चुपचाप भागता चला आ रहा था। यह था जलदस्यु नामक एक ख़ूंख़ार अलसेशियन कुत्ता।

उस शानदार सेब के बग़ीचे से, जिसकी रखवाली जलदस्यु करता था, न केवल लड़के कतराकर चलते थे बल्कि वयस्क

 भी, जिन्हें पराए सेबों से कोई वास्ता न था बाड़े की ओर

भयभीत-से देखते थे जिसके किनारे-किनारे झबरे बालोंवाला, भारी-भरकम चौपाया ग़ुस्से से बड़े, पीले दांत दिखाते हुए कसमसाया करता था।

और अब यह विकराल दैत्य हमारी ओर बढ़ा आ रहा था। उससे बहुत पीछे ऊंची एड़ी के जूते पहने हुए एक स्थूलकाय महिला दौड़ती चली आ रही थी। वह चिल्ला रही थी, चेन घुमा रही थी, पर ग़ुस्से से तमतमाया हुआ कुत्ता चुप्पी साधे रहा।

हमारे बीच फ़ासला प्रतिक्षण घटता जा रहा था। भागना फ़िज़ूल था – यह कहीं ज़्यादा ख़तरनाक होगा। बेहतर यही था कि वहीं रुककर कुत्ते से शिष्टाचारपूर्ण बातचीत करते हुए उसका तब तक ध्यान बंटाया जाए, जब तक कि उसकी मालकिन चेन लेकर न पहुंच जाए। और मुख्य बात यह थी कि उसके सामने भय न प्रगट किया जाए!

लेकिन अभी अलीस्का को भागने का मौक़ा था। मैं उसे दैत्य कुत्ते को नहीं सौंप सकती थी। उचित यही था कि अलीस्का को तुरन्त आज़ाद कर दिया जाए – भले ही मैं उसे दुबारा न देख पाऊं...

मैंने अलीस्का को नीचे उतार दिया। आज़ाद होते ही वह भागकर झाड़ियों में छिप गई।

शायद कुत्ते ने लोमड़ी को भागता हुआ न देखा हो या उसे नज़रअन्दाज़ करके मुझ पर टूट पड़ना चाहता हो। उसने अब तक हमले की दिशा न बदली थी और चुपचाप बिना भौंके मेरी तरफ़ बढ़ता चला आ रहा था। निःसन्देह यह सबसे ख़तरनाक बात थी।

मैंने झट से एक पुराने भोज वृक्ष का सहारा लिया और अपनी पीठ उसके मोटे तने से टिकाकर खड़ी हो गई। अब मेरे और कुत्ते के बीच लगभग दो मीटर का फ़ासला था। मैंने तुरन्त उस कुत्ते की ख़ुशामद शुरू कर दी, उसे प्यार से पुचकारते हुए प्रार्थना की : "भाई साहब, मुझ पर मेहरबानी बनाए रखिए, काटिए नहीं ..."

कुत्ता वहीं रुक गया। उसकी इस उधेड़बुन से मुझे कुछ राहत मिली। मैं संयत स्वर में पूर्ववत बुदबुदाती रही : "आप इतने आकर्षक, इतने चतुर, इतने दयालु हैं ..."

इसी क्षण मैंने देखा कि वह ख़ूंख़ार कुत्ता मुझ पर झपटने ही वाला है : उसने मेरे गले को निशाना बनाया। पर वार ख़ाली गया। मुझे याद नहीं कि मैं दूसरा वार कैसे बचा पाई।

मैं बेहद डरी हुई तीसरे हमले का इन्तज़ार करने लगी, मेरी एक नज़र कुत्ते की मालकिन पर थी, जो जी-जान से मेरी ओर भागती आ रही थी। इस भयावह स्थिति ने उसे शक्ति दी, पर हर हालत में वह समय पर मुझ तक न पहुंच सकती थी। और क्या यह थुलथुल औरत उस ग़ुस्सैल कुत्ते को क़ाबू में कर पाएगी?

और इसी क्षण जलदस्यु, जो अंतिम हमले के लिए तैयार हो चुका था, चिल्ला पड़ा। मैं अपनी आंखों पर विश्वास न कर सकी – मेरी नन्ही बहादुर लोमड़ी ने बुलडाग की तरह उसकी पिछली टांग में काट खाया ...

कुत्ता पलक झपकते ही घूमा, उसका जबड़ा खुला, दांत बजे, लेकिन निशाना ख़ाली गया। अलीस्का हवा से बातें करती हुई दूर जा चुकी थी। उसकी रोएंदार दुम ऊपर तनी

हुई थी जिसके फलस्वरूप वह दुगनी छोटी हो गई और अब उसे पकड़ पाना दुगना मुश्किल हो गया। जलदस्यु मेरे बारे में भूलकर अलीस्का के पीछे झपट पड़ा।

मैंने चैन की सांस ली और छोटे रास्ते से घर की ओर दौड़ चली। मैं निश्चिन्त थी कि लोमड़ी ने कुत्ते की गिरफ़्त में आने से ख़ुद को बचा लिया होगा। लेकिन क्या पता वह घर लौटकर आए भी?

जालीदार अहाते के पास पहुंचकर मैंने देखा कि अलीस्का अपने घर की छत पर लेटी है, सिर्फ़ उसकी सांस की रफ़्तार तेज़ थी। उसकी सारी आकृति, अलसाई-सी मुद्रा और अधखुली आंखें मानो यह कहती हों: "सच कहें कुछ भी नहीं हुआ। मैंने महज़ फ़र्ज़ निभाया। वही किया जो ख़ुद का सम्मान करने-वाली हरेक लोमड़ी के लिए उचित था। हम, कोरसैक लोमड़ियां, अपनी वफ़ादारी नहीं छोड़ते, मित्र को संकट से उबारते हैं।"

अक्तूबर का महीना आया, पानी ख़ूब बरसने लगा। लेकिन हम लोग अभी बंगले में ही थे – हम यह निर्णय न कर पाए कि अलीस्का का क्या किया जाए? स्पष्ट था कि शहरी फ़्लैट में उसे रखना संभव न था। अन्त में एक दिन ज़िन्दगी ने ख़ुद ही रास्ता सुझा दिया।

अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में मुझे टूर पर जाना पड़ा और दुर्भाग्य से मेरे यहां पले सभी जानवरों को बंगले की मालकिन दादी माशा की कृपा का मोहताज होना पड़ा। वह बुढ़िया पहले ही अलीस्का से नफ़रत करती थी। यह उसकी समझ से बाहर था कि कोई कैसे एक 'अनुपयोगी' जीव की इतनी परवाह करता है?

तीन सप्ताह बाद जब मैं टूर से वापस आई, मैंने देखा कि अलीस्का का घर ख़ाली पड़ा है। मैं व्याकुल-सी बुढ़िया के पास पहुंची। वह मुझे देखकर ख़ुशियां उड़ेलती-सी ख़ुद ही कहने लगी: "तुम्हारे जाने के बस दो दिन बाद ही वह भाग गई। मैं सुबह उसके लिए खाना लेकर आई। जैसा तुमने बताया था, मैंने वही किया। मैंने सोचा कि वह कमीनी अभी उछलकर घर से बाहर आएगी, मुझे देखकर खांसना शुरू करेगी। लेकिन वह बाहर नहीं आई। तब मैंने देखा कि अहाते का दरवाज़ा थोड़ा-सा खुला हुआ है। शायद मैं उसे रात में बन्द करना भूल गई थी। और लोमड़ियां तो चालाक होती हैं... अरे, अफ़सोस की बात ही क्या है? अच्छा हुआ कि वह ख़ुद ही भाग गई और तुम्हें झंझट से मुक्त कर गई। आख़िर उसे लेकर भी तो तमाम सिर-दर्द था!"

अलीस्का के भागने के बाद बीस से अधिक दिन गुज़र गए। लेकिन मैं यह अच्छी तरह जानती थी कि यदि वह किसी दुर्घटना का शिकार न हुई होगी, तो वह ज़रूर अपने छोटे-से घर में एक से अधिक बार वापस लौटी होगी। लेकिन बंगले में तब था भी तो कौन? दादी माशा...

यह भी हो सकता है कि अलीस्का की आज़ादी का पहला दिन ही उसकी ज़िंदगी का आख़िरी दिन रहा हो। शायद ही कुत्ते या शिकारियों ने हमारी प्यारी लोमड़ी को जीवित छोड़ा हो, जो वन्य जगत के लिए बहुत ज़्यादा असहाय थी। अलीस्का तो अपना आहार भी जुटाना न जानती थी...

शत-प्रतिशत निराशा के बावजूद मैंने उसके घर की छत पर मांस का एक टुकड़ा डाल दिया था। सुबह वह टुकड़ा वैसे ही पड़ा रहा।

दूसरी रात में यह टुकड़ा ग़ायब था। पर लोमड़ी के घर के क़रीब गीली ज़मीन पर बिल्ले के पंजों के निशान थे...

थोड़े दिन बाद हम लोग शहर वापस चले आए। जाते समय मैंने दादी माशा से अनुरोध किया कि वे अलीस्का के खाने के लिए कुछ टुकड़े उसके घर की छत पर अवश्य डाल दिया करें। यदि दादी माशा ने मेरे अनुरोध का ख़्याल किया होगा तो वह खाना किसी आवारा बिल्ले के काम आया होगा।

...मुझे फिर से टूर पर जाना पड़ा और वापस लौटने के बाद अपने शहरी फ़्लैट में ही रह गई। लेकिन मार्च के महीने में मैं दादी माशा से मिलने आई।

यह वसन्त का एक सुहाना दिन था। यादें अब धुंधली पड़ चुकी थीं। समय की गति के साथ-साथ मनुष्य की स्मृतियां भी शनैः शनैः मिटती जाती हैं... मुझे सिर्फ़ इतना ध्यान ज़रूर बना रहता कि मैं अलीस्का के अहाते के क़रीब कभी न जाना पड़े।

और उस रात मैंने अलीस्का को स्वप्न में देखा। उसकी आवाज़ सुनते ही मेरी आंख खुल गई – झींगुर की तरह महीन झनझनाती हुई आवाज़ में सुखद आश्चर्य का पुट था।

मैंने कमरे की बत्ती जलाई। थोड़ी देर पढ़ती रही और फिर सो गई। और अगली सुबह मैंने भुरभुरी, मुलायम बर्फ़ पर पदचिन्हों की एक पतली-सी शृंखला देखी : घर की उस खिड़की तक, जिसके बग़ल में मेरा बिस्तर था। नन्हे-नन्हे पंजों के निशान बेशक अलीस्का के पंजों की तरह थे।

क्या सचमुच अलीस्का जीवित थी, क्या वास्तव में कोई धुंधली-सी याद उसके चेतन-मन में कौंधकर उस बेचारी को बंगले तक खींच लाई थी और वह भी उस वक़्त, जब मैं वहां पर मौजूद थी?

लेकिन मुमकिन है कि ये किसी दूसरे जानवर के पंजों के निशान रहे हो—आख़िर बंगले के बग़ल में ही जंगल था। बेहतर हो कि दूसरे जानवर के पदचिन्ह रहे हों। यह कल्पना ही हृदय विदारक लगती है कि कहीं आसपास एकाकी जीव भटक रहा है, एक ऐसा जीव, जिसको मेरे अलावा किसी की चाह नहीं है और जो हमेशा के लिए बिछड़कर आंख से ओझल हो गया है। उसके लिए मैं ही सदैव ज़िम्मेदार रहूंगी, क्योंकि मैंने ही उसे अपना दोस्त बनाया था, पर उसकी सुरक्षा न कर सकी...

अलीस्का... न जाने कहां से आई और न जाने कहां चली गई। और अब मैं कभी, कभी भी यह न जान पाऊंगी कि उस रात भुरभुरी बर्फ़ पर किसने अपने नन्हे पंजों के निशान बनाए थे...

पाठकों से

रादुगा प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। हमें आशा है कि आपकी भाषा में प्रकाशित रूसी और सोवियत साहित्य से आपको हमारे देश की संस्कृति और इसके लोगों की जीवन-पद्धति को अधिक अच्छी तरह जानने-समझने में मदद मिलेगी। हमारा पता है:

रादुगा प्रकाशन, 17,
ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ